

## इस्लामी संस्कृति का भारतीय भाषा पर प्रभाव

डा० श्वेता गुप्ता\*

संस्कृति से जुड़ा एक और पक्ष है—‘भाषा और साहित्य’। इस्लाम की पवित्र भाषा अरबी थी, जो आरम्भिक आक्रमणकारियों की मातृ-भाषा थी, किन्तु बाद के हमलावरों में तुर्कों की प्रधानता होने के कारण अरबी से प्रभावित उनकी परिष्कृत भाषा तुर्की तथा फारसी बोली जाने लगी। सर्वप्रथम भारत में लाहौर फारसी साहित्य के विकास का केन्द्र रहा। मसूद (1030—1040 ई०) के दरबार में फारसी का सर्वप्रथम कवि ‘अब्दुल्लाह रुज्बेह’ था। उसके पश्चात् कवि ‘अबुल-फराज रूनी’ ने उसकी परम्पराओं को जारी रखा। इसके बाद गजनी वंश के शासनकाल में लाहौर के ‘मसूद-साद-सलमान’ का नाम आता है, जिन्होंने अपने फारसी कसीदों के द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध लड़े गये युद्धों का वर्णन किया है। उसके बाद ‘अबू-अला-अता इब्न याकूब’ और ‘जमालुददीन-युसुफ-इब्न नस्त्र अल-कातिब’ ने भी फारसी भाषा में पद्य रचनाएँ की थी। बाद में गौरी के शासनकाल में ‘अब्दुल रऊफ हरबी’ तथा ‘अबू वक्र खुसरवी’ ने फारसी में कसीदे लिखकर फारसी साहित्य को उन्नत बनाया। इस प्रकार लाहौर फारसी साहित्य का केन्द्र रहा।

भारत में मुसलमानों के आने के बाद कई हिन्दुओं ने मत-परिवर्तन किया। इस्लाम धर्म स्वीकारना तो आसान था, किन्तु भाषा का बदलना आसान नहीं था। फारसी और अरबी भाषाओं का बहुत प्रभाव सिंध, पंजाब और कश्मीर पर पड़ा। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सिंधी, कश्मीरी तथा पंजाबी भाषाएँ विशुद्ध आर्य परिवार की भाषाएँ हैं। किन्तु, सिंधी, पंजाबी और कश्मीरी में अरबी-फारसी के इतने शब्द घुल-मिल गये हैं कि आर्य भाषा इनसे दूर हो गयी। सिंध, कश्मीर और पंजाब के लोग हिन्दी भाषा में अधिक प्रचलन अरबी और फारसी भाषा का चाहते हैं क्योंकि अरबी तथा फारसी शब्दों के साथ उनका परिचय बहुत अच्छा है। इन दोनों भाषाओं का प्रभाव हिन्दी व्याकरण पर भी पड़ा। मुसलमान जब और जहाँ भी भारत में गए उन्हें देशी जनो के सम्पर्क में आना पड़ा और फलस्वरूप एक अन्तर सामुदायिक

वर्नाक्यूलर (क्षेत्रीय भाषा) भाषा का अविर्भाव हुआ। मुसलमानों के सम्पर्क में सिंध में भी एक भाषा का विकास हो रहा था। किन्तु, यह उर्दू नहीं थी। यह आधुनिक भाषा का पूर्व रूप जो मूलतः आर्य भाषा थी, जो अरबी से प्रभावित थी।

जहाँ तक फारसी भाषा के प्रभाव की बात है तो भारत-ईरान सम्बन्ध इस्लाम के उदय होने के पूर्व से है। ईरान में भी इस्लाम के आने से पूर्व फारसी भाषा का प्रयोग किया जाता था। मुस्लिम काल में भी भारत-ईरान सम्बन्ध उसी प्रकार अनवरत चलते रहे, जिस प्रकार पूर्व में चलते थे। फारस की खाड़ी और भारत के पश्चिमी समुद्र तट के बीच होने वाले व्यापार में अरबों तथा ईरानियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह सम्बन्ध केवल व्यापारिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक भी थे। फारस के व्यापारी, सैनिक, इंजीनियर, शिल्पी सदैव भारत आते रहते थे। वे लाहौर, मुल्तान तथा दिल्ली में निवास करते थे। उनके स्थायी रूप से निवास करने के कारण एक महत्वपूर्ण उपनिवेश का निर्माण हो रहा था, जहाँ आगन्तुक ईरानी आते थे। भारत में गजनवियों के आने से पूर्व ही फारसी भाषा पंजाब और दिल्ली में एक जानी पहचानी भाषा बन चुकी थी। जब गजनवियों का आगमन स्थायी रूप से लाहौर में हुआ तो वे महमूद गजनवी के दरबार की साहित्यिक अभिरुचि, विवेकता और शौर्य को भी साथ ले आये। दोनों संस्कृतियों के संगम से लाहौर फारसी भाषा तथा संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गया। खुरासान, अफगानिस्तान, ट्रान्सोोनिया के कवि लाहौर आने लगे और सभी प्रदेशों में यह एक गौरवान्वित प्रान्त बन गया जहाँ विद्वानों का जमावड़ा लगा रहने लगा।

मुसलमानों की राजधानी हिन्दी भाषी भू-भाग पर थी, अतः फारसी शब्दों का प्रचलन जितना इन भागों में हुआ, उतना भारत के अन्य भागों पर नहीं हुआ। हिन्दी के कवि यद्यपि यह जानते थे कि उनकी भाषा संस्कृत के समीप है, फिर भी अरबी-फारसी शब्दों से बिल्कुल बचकर लिखने की उनकी बान नहीं थी। पृथ्वीराज रासो नामक महाकाव्य के रचियता चन्दबरदाई लाहौर के थे, जहाँ मुस्लिम राज्य पृथ्वीराज के काल से करीब दो सौ साल पूर्व से था। चन्दबरदाई ने अपने महाकाव्य में फारसी और अरबी शब्दों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि देखकर आश्चर्य होता है। चन्दबरदाई ने स्वयं दावा किया है कि उनके काव्य में पुराण ही नहीं, कुरान का भी प्रतिपादन किया गया है। इसके अलावा इसमें आवश्यकतानुसार अरबी और फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। जैसे—

निशान के लिए निसान शब्द, शर्म के लिए सरम शब्द, जोर के लिए जुट और जिहाज जिहाद के लिए। पृथ्वीराज के कवि का इस्लाम के प्रति यह आदर का भाव, यही हिन्दू धर्म था।

अरब लेखक इस्तखरी (340हि0/962ई0) ने भी लिखा है कि मुल्तान में प्रायः लोग सिंधी के साथ-साथ फारसी भी बोला करते थे। इसी प्रकार का विवरण इब्न हौकल (367हि0/989ई0) भी बताता है कि मुल्तान हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। मंसूर और मुल्तान और उसके आस-पास के क्षेत्रों में अरबी और सिंधी बोली जाती थी। मकरान वालों की बोली फारसी और मकरानी है। इसी प्रकार बुशारी जो (375हि0/997ई0) में भारत आया था बताता है कि यहाँ के लोग फारसी भाषा समझते हैं। यहाँ की ज्यादातर जनता अरब की थी। मुल्तान के बाद जो दूसरा नगर था, वह सिंध था। अरब इतिहासकार मसऊदी बताता है कि सिंध की अपनी भाषा है। जो भारत की अन्य भाषाओं से अलग है। मंसूर के बादशाह देवल के सम्बन्ध में बुशारी कहता है कि यहाँ की भाषा पर अरबी का कितना प्रभाव पड़ा होगा इसका एक प्रमाण आज भी विद्यमान है। सिंधी भाषा में अरबी भाषा के शब्द उसी प्रकार मिले हुए हैं जिस प्रकार उर्दू में मिले हुए हैं। सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि आज भी सिंधी की लिपि ज्यों की त्यों अरबी की तरह ही है। महमूद गजनवी और गौरी के आक्रमणों के बीच के 150 वर्षों के काल में अरबों और सिंध के पड़ोसी राज्यों के बीच होने वाले अन्तः सम्बन्ध के कारण अरबी जो अरबों की भाषा थी, अरबी लिपि के साथ सिंध में आयी और सिंधी भाषा को प्रभावित कर लिया। यही नहीं स्वामी दयानंद सरस्वती भी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि भारत में अरबों के साथ होने वाले व्यापारिक सम्बन्धों के कारण, जिसकी प्राचीनता महाभारत काल तक जाती है, उस समय भी लोग अरबी भाषा जानते थे। लाहौर, सिंध, मंसूर, मुल्तान के अतिरिक्त पंजाब में भी अरबी-फारसी शब्दों का प्रभाव पड़ा। महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण पंजाब की भूमि भी ईरान और मध्य-एशिया के मुस्लिम देशों के लिए खुल गयी। महमूद और उसके उत्तराधिकारियों के आक्रमणों की लहरों ने धीरे-धीरे पंजाब की भूमि पर भी अपना राज्य स्थापित करना शुरू किया। प्रारम्भ में फारसी भाषा, ज्ञान (शिक्षा) का साधन थी, किन्तु धीरे-धीरे यह प्रशासन में भी प्रयुक्त होने लगी।

उत्तर भारत के अतिरिक्त दक्षिण भारत में भी अरबी-फारसी भाषा का

प्रभाव पड़ा। दक्षिण भारत में मालाबार और कोरोमंडल में अरबी भाषा का प्रवेश उसी समय हो गया था, जब अरब भारत के दक्षिण पश्चिम और दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में आये और संस्कृत, तमिल, मलयालम और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ बंध गये। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में अरबी-फारसी शब्दों के आने का मुख्य कारण उत्तर भारत में मुसलमानों का शासक के रूप में आना और फारसी भाषा को प्रशासन की भाषा बनाना था। अरबी भाषा को धर्म और दर्शन की भाषा घोषित किया गया। दक्षिण भारत में अरबी-फारसी शब्दकोष को व्यापार-वाणिज्य, धर्म-दर्शन के क्षेत्र में देखा जा सकता है। सूफी संतो के माध्यम से भी इस भाषा का प्रसार भारत में हुआ। देखा जाय तो सम्पूर्ण भारत में (कुछ हिस्सों को छोड़कर) कहीं न कहीं ईरानी तथा अरबी बस्तियाँ थी, जो मुसलमानों के आने से पूर्व विद्यमान थी। जैसे-कश्मीर, पंजाब, गुजरात के कुछ भागों में, बिहार आदि। इन बस्तियों का भारतीय जनता के साथ सम्बन्ध बढ़ा और काफी बड़ी सख्या में प्राचीन ईरानी शब्द भारतीय बोलियों में प्रवेश कर गये। जैसे-कश्मीरी, पंजाबी, गुजराती, अवधी आदि भाषाओं में।

अरबी और फारसी का हिन्दी पर क्या प्रभाव पड़ा इस सन्दर्भ में ताराचन्द्र कहते हैं कि हिन्दी पर मुस्लिम प्रभाव बहुत गहरा है, जो उसके शब्दकोष, व्याकरण, रूपकों, स्वरूप, तौर तरीकों में भी दिखाई देता है। इस प्रकार सिंधी, पंजाबी, गुजराती, तमिल, बंगाली आदि भाषाओं पर अरबी-फारसी भाषाओं का प्रभाव पड़ा। हिन्दी के प्रख्यात कवि और लेखक रामधारी सिंह दिनकर भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि अरबी-फारसी के कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनके तत्सम् या देशज वाक्य हैं ही नहीं। हो सकता है कि इनके शब्द पहले रहे हो। साथ ही यह संभावना भी है कि जिन चीजों के वे नाम हैं, वे चीजें इस देश में मुसलमानों के साथ लायी हुयी थी या उनके बाद पहुँची है। जैसे-पायजामा, रुमाल, शाल, दोशाला, पुलाव और अचार। इनका प्रचलन भारत में पहले भी था, किन्तु इस बात का पता नहीं चलता कि इन चीजों को यहाँ के लोग क्या कहते थे। आभूषणों में हमेल, बाजूबंद, जंजीर पहले भी यहाँ पहने जाते थे और इनके संस्कृत नाम पुस्तकों में मिलते भी हैं किन्तु, इनके संस्कृत नाम अब सुनाई नहीं देते। हुक्का, चिलम, बंदूक, तख्ता, बादाम, मुनक्का, सेब, अनार, जलेबी, बालूशाही, मुरब्बा, तश्तरी, चमचा, शीशी, शीशा, दलाल, सराफ, चादर, तबीयत, बर्फ, चश्मा, संदूक, कुर्सी, तंग, जहाज, दालान, पर्दा, मिजाज, मल्लाह, कारीगर ये सभी शब्द अरबी या फारसी के हैं।

वर्तमान में अगर ये शब्द हिन्दी से निकाल दिये जाये तो इनका स्थान लेने वाले हिन्दी में शब्द नहीं मिलेंगे। इसके आलावा अरबी-फारसी भाषा में बहुत से शब्द क्रिया विशेषण से भी हैं, जिन्हें अगर हटा दिया जाए तो हिन्दी के कोष में कमी आ जाएगी। जैसे- जल्दी, बिल्कुल, यानी, बेशक, हर्गिज, करीब-करीब, वगैरह, फौरन, शायद, खैर, वाकई, राजी-खुशी, लायक, खातिर, वास्ते, तरफ, अगर, मगर, सिवाय, बाद, अलावा, लेकिन, वर्ना, बावजूद, चूंकि, बल्कि, ताकि आदि जो अरबी तथा फारसी के होने पर भी हिन्दी भाषा के अंग हैं।

जिस प्रकार हिन्दी पर अरबी फारसी का प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार अरबी फारसी पर भी हिन्दी का प्रभाव पड़ा। मुसलमानों ने संस्कृत और हिन्दी सीखी। भाषा ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में पहल मुसलमानों ने की। मुहम्मद-बिन-कासिम, महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी के समय में राजकीय कार्य हिन्दी भाषा के माध्यम से होते थे। इसके पीछे मात्र प्रशासन सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर करने का मन्तव्य नहीं था, प्रत्युत हिन्दी भाषा की सादगी में निहित वह अपूर्व साहित्यिक मार्दव भी था, जो उन्हें बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता था। अन्यथा कोई कारण नहीं था कि अलबीरुनी तथा शाहनामा के रचियता फिरदौसी का आश्रयदाता महमूद गजनवी अपनी सभा में सुंदर, विजयराज, नाथ आदि हिन्दु जनों को स्नेहसहित उच्च पद (मनसबदारी) देने के साथ-साथ 'मसऊद-बिन-सलमान' नामक मुसलमान कवि को हिन्दी में कविता करने की प्रेरणा देता। इन्होंने 'दीवान-ए-हिन्दी' की रचना की। इसका रचनाकाल सं० 1080 के लगभग पड़ता है। महमूद के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है कि जब उसने कालिंजर के राजा का दुर्ग छीन लिया तो राजा नंद ने उसके पास एक हिन्दी भाषा में एक प्रशस्तिमूलक छंद लिखकर भेजा। महमूद हिन्दी जानने वाले अपने सभासदों की सहायता से छंद का गूढ़ार्थ समझकर अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने कालिंजर दुर्ग लौटाते हुए राजा को पारितोषिक स्वरूप चौदह अन्य किले भी प्रदान किये।

हिंदी भाषा का विकास एक जन भाषा के रूप में हुआ है। हिंदी भाषा ने अपने स्थान और काल के भेद से अपनी दीर्घ यात्रा के रूप में अनेक रूप धारण किये हैं। अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से लगता है। इसी अपभ्रंश को कुछ विद्वानों ने उत्तर अपभ्रंश या

पुरानी हिंदी कहा है। काव्य भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी का अरबी और फारसी पर प्रभाव तथा अरबी और फारसी का हिन्दी पर प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव वर्तमान में इस प्रकार सम्मिलित हो चुका है कि दोनों ही भाषाओं से उन शब्दों को निकालना असंभव है। ये शब्द इन भाषाओं के प्राणवायु स्वरूप हैं।

